शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जून 2014

'जूठन' में दलित जीवन की अभिव्यक्ति

अभय कुमार तेलंग (शोधार्थी)
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय
जबलपुर, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

भारतीय सामाजिक संरचना के तीन मुख्य आधार रहे हैं। आश्रम व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था और पुरुषार्थ। वर्ण व्यवस्था से जाति व्यवस्था में जाते ही भारतीय समाज अस्पृश्यता से अभिशप्त हो गया। इसने मनुष्य को मनुष्य मानने से इनकार कर दिया। इसके परिणामस्वरुप एक बहुत बड़े तबके को पीढीयों तक अत्याचारों के दंश को सहन करना पडा। उन पर जो बीती है, उस पर विचार करते हैं तो यही प्रश्न उठता है कि क्या हम स्वयं को मनुष्य मान सकते हैं। जब ऐसा बड़ा समुदाय चेतना संपन्न हुआ और विचारशील मनुष्यों का ध्यान इस ओर गया तो उनकी लेखनी रुके बिना नहीं रही। दलित, पीड़ित समुदाय ने अपने ऊपर बीती घटनाओं को समाज के सामने यथार्थ ढंग से प्रस्तुत करना प्रारम्भ किया। ओमप्रकाश वाल्मीकि उन्ही में से एक हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में उनकी आत्मकथा जूठन में वर्णित दलित जीवन की अभिव्यक्ति पर विचार किया गया है।

प्रस्तावना

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी आधुनिक दलित साहित्य के प्रतिनिधि रचनाकारों में से एक है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का जन्म 30 जून सन् 1950 में मुजफ्फर नगर (उ.प्र.) के बरला ग्राम में एक निम्न दलित वाल्मीकि (चूहड़ा) परिवार में हुआ। चूहड़ा परिवार में जन्म लेना ही ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य सृजन का मूल कारण बना इनके परिवार में माता-पिता, पांच भाई एक बहन थी। पिता का नाम छोटन था, जो तगाओ की सेवा करने का कार्य किया करते थे। परिवार में सबसे लाड़ले ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ही थे और पढ़ाई करने का सुअवसर भी परिवार में इन्हें ही प्राप्त हुआ। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने 80 के दशक से लिखना शुरू किया, लेकिन साहित्य के क्षेत्र में वे चर्चित और स्थापित हुए 1997 में प्रकाशित अपनी आत्मकथा 'जूठन' से। इस आत्मकथा में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने दलित वर्ग की उन सभी सामाजिक समस्याओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया जिसे उन्होंने अपने वास्तविक जीवन में भोगा।

'जूठन' में अभिव्यक्त दलित जीवन

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने अपनी इस आत्मकथा में बताया कि उन का जीवन बचपन से ही अभावग्रस्त था। उन के घर का प्रत्येक सदस्य कुछ न कुछ कार्य करता था। तगाओं के घर से लेकर खेती-बाड़ी मेहनत-मजदूरी सभी कार्य होते थे। कभी-कभी रात में भी बेगार करनी पड़ती थी, जिस के बदले पैसा या अनाज नहीं मिलता था। इतना करने के बाबजूद भी दो वक्त की रोटी ठीक से नहीं चल पाती थी। कोई तगा कभी नाम लेकर उन्हे नहीं पुकारते थे। नाम तक लेना अपनी शान के खिलाफ समझते थे। यदि उम्र में बड़ा हो तो, ओ चूहड़े, बराबर या उम्र में

छोटा होता तो अबे चूहड़े के यही संबोधन करते थे।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी आगे लिखते हैं कि, मास्टर सेवकराम मसीह के खुले तथा बिना चटाई वाले स्कूल में उन्होंने अक्षर ज्ञान शुरू किया। बेसिक प्राइमरी विद्यालय बरला में जो कक्षा पांच तक था वही शिक्षा प्रारंभ हुई। स्कूल में भी चारों ओर अस्पृश्यता का माहोल था। स्कूल में भी इन्हें जातीय समस्याओं का सामना इसी प्रकार करना पड़ा। "एक रोज हेडमास्टर कालीराम ने अपने कमरे में बुलाकर पूछा क्या नाम है बे तेरा 'ओमप्रकाश' 'चूहड़े का है'? 'जी' ठीक है ...वह जो सामने शीशम का पेड़ खड़ा है, उस पर चढ़ जा टहनियाँ तोड़ के झाड़ू बणा ले और पूरे स्कूल कू ऐसा चमका दे जैसे सीसा तेरा तो खानदानी काम है।" ओमप्रकाश दिन-भर झाड़ू लगाते रहे। दूसरे दिन हेडमास्टर ने उन से फिर यही कार्य कराया, तीसरे दिन ये कक्षा में जाकर बैठे ही थे कि हेडमास्टर जी की आवाज आई बाहर निकल, और फिर झाड़ू लगाने के लिए कह दिया। झाड़ू लगाते हुए उन्हें पिताजी ने देख लिया, जिस का विरोध उन्होंने किया। वे जिस के पास भी गये उसी ने यह कहा - "क्या करोगे स्कूल भेजके या कौवा भी हंस बण सके तुम अनपढ़ गवार लोग क्या जाणो, विद्या ऐसे हासिल न होती। अरे! चूहड़े के जातक कू झाड़ू लगाने कू कह दिया तो कोण सा जुल्म हो गया यो फिर झाड़ू ही तो लगवाई है, द्रोणाचार्य की तरियां गुरू दक्षिणा में अंगूठा तो नहीं मांगा।"

कई गांवो में आज भी इसी प्रकार के कृत्य देखने में आते हैं। अध्यापक अपने निजी कार्यो को इन्हें पास करने का लालच देकर करवा लेते हैं। ब्रजपाल सिंह किसी न किसी बहाने से उन्हें रसायन प्रयोगशाला से बाहर कर देते थे या किसी काम से कहीं भेज देते थे। कई महीने तक ऐसा ही चलता रहा जिस के कारण बारहवीं कक्षा में प्रेक्टिकल में कम अंक होने की वजह से वे फेल हो गये। यह शिक्षकों द्वारा अनावश्यक उत्पीड़न नही है तो क्या है ?

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी 'जूठन' आत्मकथा में आगे बताते हैं कि, उन्हें उच्च वर्गीय छात्रों द्वारा सताया जाता था। "त्यागियों के बच्चे चूहड़े कहकर चिढ़ाते थे। कभी-कभी बिना कारण पिटाई भी कर दते थे।" अध्यापक ही नहीं अपितु साथ पढ़ रहे विद्यार्थियों के मन में दलित तथा सवर्ण के बीच की खाई विद्यमान रहती है। क्योंकि वे बचपन से ही ऐसे माहौल में ढले हैं। उनके परिवार द्वारा दलित पर किये जाने वाले अत्याचार को देखकर उन की प्रवृत्ति भी वैसी ही कठोर बन जाती है। वे बच्चे भी अपने अभिभावकों की गलतियों का अनुसरण कर दलित विद्यार्थियों का मजाक उड़ाते हैं। उन्हें कक्षा में अपमानित करते हैं। इनका विरोध करने की किसी में हिम्मत ही नही होती थी। वास्तविकता यह है कि यदि कोई बालक 'दलित' है, तो उसे इंसान नहीं समझा जाता, उसे शिक्षा ग्रहण करने का कोई अधिकार नहीं है। यदि वह कोई प्रथा का विरोध कर आगे बढ़ना चाहता है तो उसे इस तरह का अपमान और ताने सहन करना पड़ते तभी वह शिक्षा प्राप्त कर सकता है। यही कारण है कि अधिकांश दलित वर्ग के बालक-बालिका अशिक्षित पाये जाते हैं। क्योंकि ये समाज के ठेकेदार उन्हें बढ़ने तथा पढ़ने नहीं देना चाहते। इस के साथ ही साथ 'दलित' विद्यार्थियों को शालेय गतिविधियों में भाग लेने से वंचित किया जाता है। उन्हें अन्य विद्यार्थियों

की तरह हंसने-खेलने में रोक लगा दी जाती है सिर्फ इसलिए कि वे दलित की श्रेणी में आते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि बताते हैं कि उन के परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण उन्हें और उन के परिवार को कम वेतन पर तगाओ के यहां काम करना पड़ता था। उन का बड़ा भाई सुखवीर तगाओं के यहां वार्षिक नौकर की तरह काम करता था। उन के जानवरों की देखभाल की पूरी जिम्मेदारी सुखवीर पर ही थी।

"इन सब कामों के बदले मिलता था जो जानवर पीछे फसल के समय पांच सेर अनाज यानी लगभग ढाई किलो अनाज, दस मवेशी वाले घर से साल भर में 25 सेर (लगभग 12-15 किलो) अनाज दोपहर को प्रत्येक घर से एक बची-कुची रोटी, जो खास तौर पर चूहड़ों के लिए बनाई जाती थी।" इस तरह शोषक वर्ग शोषण किया करते थे। आज भी हमारे देश में कई ऐसे लोग मिलेंगे जो अपना तथा परिवार का पालन-पोषण करने के लिए कम वेतन पर भी कार्य करने को मजबूर हैं। उन के दर्द को समझने वाला कोई नही हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी 'जूठन' मांगने की विवशता के बारे में बताते हैं कि "शादी-ब्याह के मौकों पर जब मेहमान या बाराती खाना खा रहे होते थे, तो चूहड़े दरवाजों के बाहर बड़े-बड़े टोकरे लेकर बैठे रहते थे, बारात के खाना खा चुकने पर झूठी पत्तलें उन टोकरों में डाल दी जाती थीं, जिन्हें घर ले जाकर वे जूठन इकट्ठी कर लेते थे। पूरी के बचे-खुचे टुकड़े, एक आध मिठाई का टुकड़ा, थोड़ी बहुत सब्जी पत्तल पर पाकर बाछे, खिल जाती थी। 'जूठन' चटखारे लेकर खाई जाती थी।"

चूहड़े का पूरा समाज 'जूठन' मांगने का ही कार्य किया करता पर जूठन भी इन लोगों को आसानी से नहीं दी जाती थी। कई तरह के अपमानजनक शब्दों का सामना भी इन्हें करना पड़ता था। एक दिन सुखदेव सिंह त्यागी की लड़की की शादी थी। वाल्मीकि जी की माँ तथा पिता ने उन के घर का काफी काम किया और बारात के दिन माँ टोकरा लेकर उनके दरवाजे के बाहर बैठी थी। साथ में मैं और बहन माया भी माँ से सिमटे बैठे थे। इस उम्मीद से कि भीतर से जो मिठाई और पकवानों की महक आ रही है, हमें भी खाने को मिलेंगे।

"जब सब लोग खाना खाकर चले गए तो मेरी माँ ने सुखदेव सिंह त्यागी को दालान से बाहर आते देखकर कहा, चौधरी जी, ईब तो सब खाणा खा के चले गए ..म्हारे जाकतो (बच्चों) कू भी एक पत्तल पर भर के कुछ दे दो। वो भी तो इस दिन का इंतजार कर रेते।" सुखदेव सिंह ने जूठी पत्तलों से भरे टोकरे की तरफ इशारा करके कहा "टोकरा भर तो 'जूठन' ले जा रही है ऊपर से जाकतो के लिए खाणा मांग री है? अपनी औकात में रह चूहड़ी। उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन।"

इस अपमान के बाद से परिवार में कोई 'जूठन' लेने नहीं गया। इतने अपमान के बाद कोई भी स्वाभिमानी व्यक्ति भूखा भले ही रह जाए, किन्तु वह दोबारा यह कार्य नही करेगा। मानव जाति के लिए यह बेहद शर्म की बात है कि, एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के आगे हाथ फैलाना पड़ता है। उस के साथ जानवरों की तरह व्यवहार, किसी भी चीज के लिए मन्नते करना, गिड़गिड़ाना, यह एक मानव का दूसरे मानव पर अत्याचार नही तो क्या है ? यदि यही कार्य किसी

दिन किसी सवर्ण को करने को दे दिया जाये तो वह भी शर्म से पानी-पानी हो जायेगा। फिर ये सवर्ण दलितों को अपनी तरह ही इंसान क्यों नही समझते। इन कृत्यों को रोकने की बजाए उन पर हंसते हैं। उन का फायदा उठाते हैं। ईश्वर ने सभी मनुष्यों को एक समान बनाया, किन्तु मनुष्य ने उसे जातियों तथा वर्गो में बांट लिया। केवल अपने स्वार्थ के लिए मनुष्य ने ऐसा किया।

निष्कर्ष

'जूठन' आत्मकथा ने आधुनिक दलित साहित्य को समृद्ध बनाने एवं दलित जीवन की यथार्थता को समाज के सामने प्रस्तुत करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की 'जूठन' आत्मकथा में दलित जीवन की अभिव्यक्ति स्वतः ही दिखाई देती है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. सं. 14-15
2. जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. सं. 81
3. जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. सं. 13
4. जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. सं. 19
5. जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. सं. 19
6. जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. सं. 21